भारतीय समाज में महिलाओं की बदलती भूमिका और द्वंद

प्रियंका कुमारी
असिस्टेंट प्रोफेसर (विधि संकाय)
समाजशास्त्र
वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर

सारांशः– आज महिलाओं के सामने तमाम ऐसी दुविधा और द्वंद खड़े हैं इससे पार पाना महिलाओं के सामने चुनौती है। परंपरागत स्वरूप से परिवार को चलाना, बच्चों का पालन पोषण करना, परिवार की देखभाल करना, पारिवारिक कार्यों को निपटाना, कृषि कार्यों में सहयोग देना, परिवार की सेवा करना, बच्चों को जन्म देना इत्यादि ऐसी पारिवारिक और सामाजिक जिम्मेदारियां हैं जिसको निभाना अपना स्वाभिमान समझती हैं। वहीं दूसरी तरफ ऑफिस के कार्यों को सही समय पर निपटाना और ऑफिस में भारतीय परंपरा के साथ कार्य करना इनके सामने द्वंद का बहुत बड़ा कारण है।

मुख्य शब्दः– द्वंद,प्राचीन युग,ऋग्वेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद,सामवेद।

मानव के विकास यात्रा और उद्भव अफ्रीका महाद्वीप में हुआ। यहीं से मानव जानवरों के बीच रहकर अपने भोजन एवं सुरक्षा के लिए जीवन यापन करता था। यह अवस्था जानवरों से कम नहीं थी। मानव स्वरूप, आज के मानव से बहुत पीछे की कहानी है, परंतु मानव की यह अवस्था, काल खंडों में निरंतर परिवर्तन और विश्व के विभिन्न भागों में फेलाव के कारण बढ़ता चला गया। इसने अपने जानवर वाली प्रवृत्ति में बदलाव लाया।

यही कारण है कि अफ्रीका महाद्वीप को मानव का पालना कहा जाता है जबकि एशिया महाद्वीप को संस्कृति का पालना कहा जाता है। मेसोपोटामिया, हड़प्पा, मोहनजोदड़ो की सभ्यता इत्यादि समाप्त हो चुकी सभ्यताएं एशिया महाद्वीप में ही घटित हुई है।

दूसरे शब्दों में मानव ने चलना, बोलना, खाना–पीना, सोना, बैठना, गाना, रोना, आग जलाना, गुफाओं और घरों में रहना, पशुपालन, कृषि इत्यादि सांस्कृतिक गतिविधियों से परिचित हुआ और अभौतिक संस्कृति से परिचय इन्ही संस्कृतियों के विकास स्वरूप हुआ। पहिया, कुदाल और लोहे का आविष्कार ने मानव की सांस्कृतिक गतिशीलता में ईंधन का काम किया, जिस पर सवार होकर आदिमानव उत्तर आधुनिक काल तक का सफर तय कर पाया है। इस विकास की कड़ी में विभिन्न

अवस्थाओं से गुजरते हुए चुनौतियों का सामना और प्रतिउत्तर देते हुए आज तक का सफर पूरा किया।

यद्यपि कुछ ऐसी प्राकृतिक, भौगोलिक और सामाजिक चुनौतियां मानव के सामने खड़ी हुई, जिन संस्कृतियों ने इन चुनौतियों का उत्तर देने में सफलता पाई उनका अस्तित्व और निखर कर आगे आया जिन संस्कृतियों ने इनका प्रतिउत्तर देने में असफलता पाई आज वह इतिहास के पन्नों पर अवशेष के रूप में दर्ज है। नील सभ्यता, मेसोपोटामिया की सभ्यता, हड़प्पा की सभ्यता इत्यादि लिपिबद्ध है।

संस्कृतियों के इस विकास के क्रम में नर और मादा ने मिलकर मुकाबला किया। महिलाओं के सामने पुरुषों से कम चुनौतियां नहीं रही, इतिहास, वेद–पुराण और प्राचीन ग्रंथों में स्पष्ट है कि महिलाओं का प्राचीन युग अत्यंत स्वर्णिम युग था। महिला प्रधान समाज भी था। महिलाओं की पूजा भी होती थी और मानवशास्त्रियों ने जिसमें **ब्रिफाल्ट, मार्गन** ने मातृसत्तात्मक समाज की संकल्पना प्रस्तुत किया और **वेस्टरमार्क, मैलिनोवस्की** आदि ने पितृसत्तात्मक समाज की संकल्पना दिया।

ऋग्वैदिक काल और महिलाएं

दशकों से यह सुनते आए हैं कि ऋग्वेद में ज्ञान का भंडार है। आज हम जिस विद्वान की चर्चा करते हैं वह सब किसी न किसी रूप में ऋग्वेद में समाहित है। हिंदू दर्शन के महत्वपूर्ण तत्व इसमें अंकित है। आध्यात्मिक चिंतन के शिखर इसमें उपस्थित है और आदर्श, उद्देश्यों और मानवीय मूल्यों के भंडार जीवन को अनुशासित, संयमित एवं सवारने के तरीके भी इसमें है, इसके नेतृत्व, उद्देश्यों के अनेक आयाम भी देखने के लिए मिलते हैं। वैदिक धर्म जन–जीवन का आधार है यह ज्ञान, उपदेश के स्रोत भी हैं। वेदों में देवी–देवता एवं मनीषयों की भी व्याख्या की गई है। इसके महत्व को दर्शाया गया है।[1]

वास्तव में ऋग्वेद एक ऐसा फलसफा है जिसके कैनवास पर प्रकृति के विभिन्न रंग अंकित है। इसी से संबंधित देवी, देवता और ऋषिकाएँ। यह कहा जाता है कि देवियों और ऋषिकाओ का साधारीकरण मानव–जगत की स्त्री के रूप में भी किया गया है क्योंकि स्त्री अथाह शक्ति का प्रतीक है और ऋग्वेद की देवियां भी। ऐसा देखने में आता है कि इन्हीं देवियों के माध्यम से स्त्रियों के अधिकारों और कर्तव्यों के स्पष्ट संकेत मिलते हैं। उदाहरण के लिए ''अनवरुद्ध मांग वाली देवी देवियां मनुष्यों को ऐश्वर्य देने में समर्थ है। वे महासुखों एवं रक्षण सामर्थ्य से मुक्त होकर हमारी ओर अभिमुख हो।''[2]

उत्तर वैदिक काल और स्त्री

ऋग्वैदिक काल का प्रभाव कम होता जा रहा था। ऋग्वैदिक काल अस्त होने से बौद्ध धर्म के उदय तक के कालखंड को उत्तर वैदिक काल की संज्ञा दी जाती है। सामान्यः काल की अवधि 1200 ई. पू. से 600 ई. पू. मानी जाती है। धर्म की दृष्टि से इसे स्वर्ण युग कहा जाता है। इस युग की विशेषता है कि धार्मिक दर्शन, आध्यात्मिक चिंतन की गूढ़ता को सीधी सरल भाषा में व्यक्त किया गया। उसे जनजीवन से सीधे जोड़ने का प्रयास किया गया। धर्म और संस्कृति समाज की जीवन शक्ति बन गई। यह हिंदू समाज के अंग बन गए।

इस काल में प्रवेश करते–करते वर्ण व्यवस्था और आश्रम व्यवस्था का जन्म हो चुका था। ''आरम्भ से आर्य–वर्ण और दास–वर्ण दो ही वर्ण थे। उत्तर वैदिक काल में यह व्यवस्था अधिक स्पष्ट और रूढ़िवादी हो गई और वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था का रूप धारण करने लगी।''[3]

मनुस्मृति काल और स्त्री

मनुस्मृति युग तक आते–आते पितृसत्तात्मक परिवार की स्थापना हो चुकी थी। परिवार का मुखिया पुरुष बन गया। कर्मकांड सर चढ़कर बोलने लगे और स्त्री की स्थिति दिन–प्रतिदिन दयनीय होती गई। वह पुरुष के अधीन होती गई। स्त्री और पुरुष के मध्य समानता की भावना विलुप्त होने लगी। स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़ने लगी। वास्तव में इस युग में स्त्री शिक्षा नगण्य में हो गई। स्त्री की सामाजिक, आर्थिक स्थिति दयनीय हो गई। इस आधार पर हम यह कह सकते हैं कि वैदिक काल और उत्तर वैदिक काल के आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक कार्य क्षेत्र में आमूलचूल परिवर्तन होने लगे। स्त्रियों की स्थिति परिवार में दोयम दर्जे की हो गई। स्त्रियों का जीवन बड़ा कलह पूर्ण हो गया था। अब कन्याओं को दुख का कारण समझा जाता था और उनके जन्म से लोग दुखी होते थे।

यद्यपि धार्मिक अवसरों पर स्त्रियों को भाग लेने का अधिकार था परंतु सार्वजनिक आदि समारोह में अब भी नहीं जा सकती थी और बाल विवाह की प्रथा आरंभ हो गई थी। स्त्रियों का आचरण तथा आदर्श भी कुछ गिर गया था।[4]

अथर्ववेद में महिलाएं

चारों वेद ऋग्वेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद और सामवेद अपना विशिष्ट महत्व रखते हैं। इस युग तक आते–आते समाज में अनेक प्रकार के अंधविश्वास स्थापित हो गए थे– जैसे भूत, प्रेत, पिशाच इसके प्रभाव से बचने के लिए अनेक प्रकार के मंत्र बनाए गए, जिससे इसके भय से निजात मिल

सके। ठीक इसी प्रकार विभिन्न प्रकार की बीमारियों के लिए भी औषधियां बनाए गए। इसके साथ ही अथर्ववेद में स्त्री और पुरुष के संबंधों को लेकर अनेक प्रकार के उपदेश और सुझाव दिए गए हैं, जिससे स्त्री की स्थिति ज्ञात होती है। इसमें स्त्री के उत्तरदायित्व का जहां वर्णन मिलता है, स्त्री की प्रशंसा में कहा गया है कि ये सब शुभगणवाली सेवा योग्य स्त्रियां हैं जो आई हैं, ''हे शक्तिमती स्त्री खड़ी हो और बलयुक्त व्यवहार को आरंभ कर। पति के साथ श्रेष्ठ पत्नी, संतान के साथ उत्पन्न संतान वाली, श्रेष्ठ व्यवहार सभी तुझ में है। तू भूमि को पूर्ण करने वाले शुभ व्यवहार को स्वीकार कर।'' [5]

यजुर्वेद में स्त्री की स्थिति

डॉ. मंगल देव शास्त्री का विचार है कि ''समस्त वैदिक साहित्य में यजुर्वेद अपना विशिष्ट स्थान रखता है। ज्ञान कर्म और उपासना मनुष्य जीवन के विकास की तीन सीढ़ियां हैं। इसमें कर्म की सीढ़ी या कर्मकांड का प्रतिपादन विशेषतः यजुर्वेद ही करता है। यद्यपि वैदिक कर्मकांड का प्रतिपादन विशेषता, यजुर्वेद ही करता है। यद्यपि वैदिक कर्मकांड में अन्य वेद भी अपना–अपना स्थान रखते हैं, तथापि इसका आधार यजुर्वेद ही कहा जा सकता है।

यजुर्वेद की व्याख्या प्राचीन भाष्यकारों ने प्रायः अभीयज्ञ की ही दृष्टि से की है। 'यज्ञ' शब्द पर विचार करने से ही इस बात की पुष्टि होती है। 'यजु' और 'यज्ञ' दोनों ही एक ही 'यज' धातु से उत्पत्ति है।[6]

यजुर्वेद में भी स्त्री संबंधी अनेक विषयों की व्याख्या की गई है। इस वेद में स्त्री और पुरुष अथवा पति व पत्नी के कर्तव्यों को संलग्न पूर्ण रूप से सामान्यता प्रस्तुत किया गया है। स्त्री पुरुष के ग्रहस्त जीवन के जहां उत्तरदायित्व से परिचित कराता है वहीं उनकी स्थिति को भी दर्शाता है। एक मंत्र का भाव है कि ''विवाह करके स्त्री–पुरुषों को चाहिए कि जिस–जिस काम से विद्या अच्छी शिक्षा, धन, सुहृदय भाव और परोपकार बढ़ उस कर्म का सेवन अवश्य किया करें।''[7]

सामवेद में स्त्री का स्थान

हिंदू धर्म और दर्शन के चारों वेदों का अपना महत्व और विशिष्ट स्थान है। सामवेद अन्य वेदों से अपनी पृथक पहचान रखता है। सामवेद ईश्वर की उपासना, भक्ति,आराधना, साधना व प्रार्थना करने की एक विशिष्ट पद्धति एक धार्मिक पुस्तक कहा जा सकता है। व्यक्ति ईश्वर से प्रार्थना करता है कि वह सुखी संपन्न व स्वस्थ रहें अपने उत्तरदायित्वों को वह पूर्ण करें विद्वानों का सम्मान

कर सके उनके उपदेशों के अनुसार अपने जीवन को ढाल सके। जन–जन की सेवा कर सके। वह यज्ञ के अनुष्ठान करने हेतु सक्षम बन सके। इस तरह सामवेद में मनुष्य ईश्वर की उपासना करता दिखाई पड़ता है और विनीत भाव से प्रार्थना करता है कि उसे इस योग्य बनाए कि उसकी मनोकामना पूर्ण हो सके।

सामवेद में स्त्री के लिए कहा गया है ''हे विदुषी स्त्री तू सूर्य की कन्या रूपी उषा के समान उत्तम गति वाले ज्ञान में हमें बसाती है। तू सहनशील, सच्चे श्रोता, जानने योग्य उत्तम जन्म वाले तथा वेदवाणी के विश्वासी मुझमे प्रकाश कर।''[8] स्त्री–पुरुषों को संबोधित करते हुए एक प्रार्थना में कहा गया है–'' हे भूगर्भ विधा के ज्ञाता स्त्री–पुरुषों ब्रह्मचर्य संपन्न स्वर्ण आदि धातुओ के अन्वेषक, सबके प्रेम पात्र, विज्ञान क्रिया के भंडार, मधुर स्वभाव से मुक्त तथा अनेक रत्नों को धारण करने वाले आप दोनों हमारे पास आए और हमारी प्रार्थना को स्वीकार करें।''[9]

मातृसत्तात्मक व्यवस्था

मैकाइवर इसे मातृसत्तात्मक न कह कर मातृक कहना अधिक अच्छा समझते हैं। मातृसत्तात्मक परिवार में शक्ति परिवार की मुख्य स्त्री के हाथों में रहती है, जबकि पुरुष उसके अधीन होता है। वह संपत्ति के स्वामी होती है तथा परिवार पर शासन करती है। इस विषय में कुछ संदेह है कि क्या इस प्रकार के परिवारों का सामान्य अस्तित्व था।[10]

ब्रिफाल्ट ने अपनी पुस्तक' The Mothers ' मे आदिम जातियों के पितृसत्तात्मक एवं मातृवंशीय संस्थाओं के उदाहरण दिए हैं। उनका तर्क है कि परिवार का आरंभिक रूप मातृसत्तात्मक था। कृषि के विकास एवं पुरुष के आर्थिक प्रभुत्व के कारण ही पितृसत्तात्मक रूप का जन्म हुआ। मातृसत्तात्मक व्यवस्था संसार के कई स्थानों पर प्रचलित रही, जैसे कि उत्तरी अमेरिका और भारतीयों में मालाबार तथा भारत के कुछ अन्य भागों में 'इरोकुइस भारतियों को मातृनामी कहा गया है, क्योंकि कबीलों की सरकारें किसी हद तक स्त्रियों के हाथों मे थी। ट्राब्रियांड दीप के निवासियों ने पितृत्व की अज्ञानता के तथ्य को मातृशासन तथा मातृसत्तात्मक वंश परंपरा के समर्थन में प्रस्तुत किया गया है। जो शक्ति खासी पत्नी को परिवार के संपत्ति के ऊपर प्राप्त है तथा कुछ कबीलों में यह प्रथा की स्त्रियों को घरों की स्वामिनी समझा जाता है, भले ही वह पुरुषों द्वारा बनाएं अथवा खरीदे हुए हो।[11]

पितृसत्तात्मक व्यवस्था

पितृसत्तात्मक परिवार में परिवार के मुखिया पुरुष के हाथों में होती थी। सभी शक्तियां पुरुष के पास होती थी। वह परिवार की संपत्ति का स्वामी और प्रबंधक होता था। परिवार के सभी सदस्य उसके अधीन होते थे, वह परिवार के धार्मिक संस्कारों की अध्यक्षता करता है। वह परिवार के देवताओं तथा अग्निकुंड का संरक्षक होता है। सिजविक ने लिखा है ''अपनी पत्नी, बच्चों तथा उसकी संतानों का पिता ऐसा निरंकुश शासन करता था कि व्यक्तिगत सदस्यों का कोई कानूनी अस्तित्व नहीं था'' वह अपने बच्चे को दंड दे सकता था। उसको बेच सकता था, यहां तक कि उन्हें जान से मार भी सकता था। प्राचीन फिलिस्तीनी मे वह अपनी पुत्री को दासी के रूप में बेच सकता था।[12]

समाजशास्त्रीय दृष्टि से यदि ऋग्वैदिक और उत्तर–वैदिक काल का विश्लेषण किया जाए तो सहज ही ज्ञात होता है कि उत्तर–वैदिक काल में स्त्री की स्थिति, उसके अस्तित्व और उसके सामाजिक जीवन में गहरे बदलाव से साक्षात्कार होता है। वैसे हम यह कहते थकते नहीं है कि ऋग्वेद काल में समाज व परिवार में स्त्री के सम्मानजनक स्थिति थी। वह परिवार की स्वामिनी थी। कृषि उसी की देन है। कृषि कार्य में ठहराव आने के कारण परिवार एक स्थान पर निवास करने लगा। यही कारण है कि आरंभ में मातृसत्तात्मक परिवार थे। जहां परिवार के केंद्र में स्त्री, पत्नी या मां थी। स्त्री उस समय अधिकार संपन्न थी। उस समय बाल–विवाह प्रचलित नहीं था, किंतु धनाढ्य लोग कई विवाह करते थे। अर्थात इस वर्ग में बहुपत्नी विवाह प्रचलित था। परंतु समाज में एक विवाह को ही सम्मान प्राप्त था।

स्त्री को देवी के रूप में स्थापित किया जाने लगा कि वह लक्ष्मी, सरस्वती दुर्गा भी है। इसलिए स्त्री का समाज में सर्वोउत्कृष्ट स्थान था। 'अर्धनारीश्वर' की कल्पना की कल्पना मांग को बढ़ाती है। उसे शिक्षा का अधिकार था। तथा चिंतनशील भी थी उसने वेद की अनेक ऋचाएं लिखी है। इसलिए आज भी गार्गी, मैत्री, लोपामुद्रा आदि को प्रतिभा संपन्न माना जाता है।

उत्तर वैदिक काल तक आते–आते समाज पुरुष प्रधान बन गया। कृषि पर उसका अधिकार हो गया है और वह संपत्ति का स्वामी बन गया। परिवार का मुखिया बन गया है। स्त्री शिक्षा का हश्र होने लगा। धीरे–धीरे वह परिवार में कैद होकर रह गई। घर की चारदीवारी में बंधी होने के कारण उसकी समस्त स्वतंत्रता का अपहरण होता है। यह वह कार है, जिसमें नारी का पराभव हुआ। वह ग्लैमर जो उसे ऋग्वैदिक काल में प्राप्त था, धीरे–धीरे समाप्त हो गया। विवाह संबंध कठोर हो गए। सगोत्रीय विवाह को अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता था। वही बहु विवाह के चलन

में वृद्धि होने लगी। जैसे–जैसे जाति के बंधन कड़े होते गए, वैसे–वैसे स्त्रियों का पद गिरता गया। इसी तरह वर्ण व्यवस्था के कारण और खासकर अनार्यों की उपस्थिति के कारण स्त्रियों का पुरुषों से स्वतंत्रता पूर्वक मिलना जुलना कम होता गया। यह स्त्री की व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर अंकुश था। यद्यपि इस युग में पर्दा प्रथा का चलन आरंभ नहीं हुआ था। परंतु स्त्रियां पुरुषों की गोष्ठियों से अलग रहने लगी थी। इससे उनके आदर–सम्मान और सामाजिक प्रतिष्ठा में गिरावट आई। विवाह की जो स्वतंत्रता ऋग्वेद कल में थी, वह घटने लगी। माता–पिता उनके विवाह का प्रबंध करने लगे। इसी तरह अनुलोम विवाह के प्रचलन से स्त्री की पदवी को हानि पहुंची।

वास्तव में उत्तर वैदिक काल बदलाव का वह आर्थिक युग है जिसमें पुरुष–प्रधान समाज बनता है और स्त्री दोयम दर्जे की होकर रह जाती है। इस युग में स्त्री आर्थिक, सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़ी तो वह आज तक परिवार व समाज की मुखिया नहीं बन पाइ, फिर भी आधुनिक प्रौधोगिकी और विज्ञान के युग में स्त्रियां प्रगति के पथ पर अग्रसर है। जड़वादी समाज को तोड़ने के लिए संघर्षरत है।[13]

उपरोक्त समाजशास्त्रियों और मानवशास्त्रियों के अवधारणा से स्पष्ट है कि विकास की इस यात्रा में महिला और पुरुष दोनों की भागीदारी बराबर की रही है।

भारतीय संस्कृति उस महिला के समान है, जिसने अपने जीवन के तमाम उतार–चढ़ाव, अच्छाई–बुराई, दुखों के कितने बसंत का आनंद ले चुकी है। समस्त गुणों और अवगुणों का अनुभवजन्य स्वरूप भारतीय संस्कृति के एक भाग है। यही कारण है कि मध्यकाल आते–आते भारतीय संस्कृति और वैभव ने दुनिया के आक्रमणकारी ,लुटेरे, उपनिवेशवादियों की पहली पसंद भारत और भारतीय संस्कृति रही। तमाम ऐसे बाह्य आक्रमणकारी और उपनिवेशवादी अपनी विस्तारवादी नीतियां और अधिक से अधिक लूटने की प्रवृत्ति लेकर भारत पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से आक्रमण किए। सब ने लूटा किसी ने धन लूटा, तो किसी ने भारतीय भूभाग को लूटा, किसी ने महिलाओं की अस्मत लूटी, तो किसी ने पुरुषों को दास बनाया। मध्यकाल में भारतीय संस्कृति की विभत्स्य घर्षणा हो रही थी। ऐसे में महिलाओं के साथ होने वाला क्रूर व्यवहार और नरकीय जीवन ने महिलाओं को काल कोठरी में बंद होने, पर्दा प्रथा का उद्भव होने, उसकी सुंदरता और रचनात्मक शैली पर जबर्दस्त प्रहार हुए। जिससे महिलाओं के मन में भय का वातावरण बढ़ता गया। समकालीन समाज में अपनी बहन, बेटियों, पत्नी और माताओं की रक्षा के लिए पुरुष

समाज महिलाओं को चारदीवारी के अंदर कैद करने, छुपाने और स्वयं मिट जाने पर भी महिलाओं की सुरक्षा करने का दृढ़ संकल्प किया।

परिणाम महिलाओं का जीवन मध्यकाल में नरकीय होता गया। अगर ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो महिला जीवन का मध्यकाल सबसे ज्यादा अंधकारमय हैं। तमाम सामाजिक बुराइयां और इनके ऊपर शारीरिक, मानसिक शोषण का दुष्प्रभाव इतना अधिक था कि बेरोजगारी, कुपोषण, भ्रूणहत्या, बलात्कार, दासता, बहुपति विवाह, सती प्रथा, बाल–विवाह इत्यादि सामाजिक बुराइयों ने जन्म लिया। परंतु आधुनिक काल में समाज में बदलाव लाने हेतु समाजशास्त्रियों ने विपरीत परिस्थितियों में भी लड़ कर समतावादी समाज की संकल्पना तैयार की और तमाम बुराइयों से बाहर निकालने का प्रयास किया।

आजादी के बाद भारत में महिलाओं ने अपने प्राचीन स्वरूप को पाने हेतु शिक्षा, रोजगार, कौशल और महिलाओं के विरुद्ध होने वाली तमाम दुष्प्रभाव को रोकने का यत्न किया। जिसमें भारत सरकार द्वारा बनाए गए विधानों और संविधान में बनाए गए प्रावधानों दोनों का प्रभाव प्रभावकारी रहा, ऐसे औपचारिक एवं अनौपचारिक संगठन विकसित हुए जो महिला कल्याण एवं समतावादी समाज के लिए बेहतर ढंग से काम कर रही हैं। महिलाओं ने घर की चारदीवारी के अंदर बेकारी, अज्ञानता की जीवनशैली ही अपना लिया था 'गरीबी की संस्कृति' अपना ली थी। उसका प्रभाव बदलने में काफी वक्त लगा।

आज महिलाएं अधिकांश क्षेत्रों में बेहतर प्रदर्शन कर रही है। चाहे वह शिक्षा का क्षेत्र हो या सेना में भर्ती होने का गौरव हो औपचारिक संगठन हो या अनौपचारिक संस्थाएं हो, घर के अंदर या घर के बाहर दोनों जगह महिलाओं की भागीदारी तीव्र गति से बढ़ रही है। यद्यपि महिलाओं का जीवन मध्यकाल से बहुत ही बेहतर स्थिति में है। इस बेहतरी का स्वाद महिलाएं आज समतावादी समाज, स्वतंत्रता और विश्व पटल पर पुरुषों के समान अपनी भूमिकाओं को निभाने के लिए प्रतिबद्ध है। बेहतर काम करना, नियमानुसार दिए गए कार्यों को निभाना, आज उनकी पहचान बन चुकी है। आज तमाम ऐसी कंपनियां महिलाओं को अधिक प्रोत्साहन देती हैं, अवसर देती है क्योंकि इनका विशेष गुण अपने कार्यों को समय से पूरा करने के कारण।

यद्यपि यह यात्रा अंततः सुखद है, परंतु आज महिलाओं के सामने तमाम ऐसी दुविधा और द्वंद खड़े हैं इससे पार पाना महिलाओं के सामने चुनौती है। परंपरागत स्वरूप से परिवार को चलाना बच्चों का पालन पोषण करना, परिवार की देखभाल करना, पारिवारिक कार्यों को निपटाना, कृषि कार्यों में

सहयोग देना, परिवार की सेवा करना, बच्चों को जन्म देना इत्यादि ऐसी पारिवारिक और सामाजिक जिम्मेदारियां हैं जिसको निभाना अपना स्वाभिमान समझती हैं। वहीं दूसरी तरफ ऑफिस के कार्यों को सही समय पर निपटाना और ऑफिस में भारतीय परंपरा के साथ कार्य करना इनके सामने द्वंद का बहुत बड़ा कारण है।

[1] वैदिक साहित्य प्रकाशन विभाग, डॉ विजेंद्र स्नातक, भारत सरकार दिल्ली
[2] डॉ. रामधन शर्मा वैदिक साहित्य

[3] डॉ सुशील माधव पाठक, विश्व की प्राचीन सभ्यता का इतिहास, पृ. 442–443
[4] श्रीनेत्र पांडे, भारत का वृहत इतिहास, पृ.109
[5] अथर्ववेद, पंडिता राकेश रानी, संवत 2031, पृ. 23

[6] श्री सावंलीय बिहारी लाल वर्मा, पृ. 25
[7] यजुर्वेद, पंडिता राकेश रानी, प्री. 55
[8] सामवेद पृ. 165।
[9] सामवेद, पृ. 166

[10] विद्याभूषण सचदेवा, डी.आर. समाजशास्त्र के सिद्धांत, 300
[11] विद्याभूषण सचदेवा डी.आर., समाजशास्त्र के सिद्धांत, पृ. 301

[12] मैकाइवर एंड पेज, समाजशास्त्र, पृ. 28

[13] सिंह जनमेजय, सिंह बी.एन., नारीवाद, पृ. 43–44.

कन्या भ्रूण हत्या